श्रीभागवत-पत्रिका के सम्बन्ध में वक्तव्य

इतिहास

परमहंस कुल मुकुट-मणि जगद्गुरु ॐ विष्णु-पाद १००८ श्री श्रीमद्-भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी यतिराज ने हिन्दी-भाषा में धर्मजगत् के सर्वोच्च विचार-धारा को प्रवाहित करने के लिये 'भागवत' नामक एक पाक्षिक-पत्रिका नैमिषारण्य, श्रीपरमहंस मठ से कार्त्तिक-कृष्णा-अमावस्या, गौराब्द ४४५, विक्रमी संवत् १९८८, ६ नवम्बर सन् १९३१ ई० में प्रकाशित किया था । ये पाक्षिक-पत्रिका के रूप में प्रति अमावस्या और पूर्णिमा को प्रकाशित होती थीं। कुछ वर्षों तक सुष्ठुभाव से प्रचारित होने के बाद उन्होंने आत्मगोपन कर लिया । श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समिति उक्त जगद्गुरु श्रील-प्रभुपाद का पादङ्कानुसरण कर, मथुरा श्रीकेशवजी गौड़ीयमठ से पुनः उक्त पत्रिका के सेवा-संकल्प से "श्रीभागवत-पत्रिका" नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं।

नित्यता

'भागवत' नित्य वस्तु हैं । उन्हें पाक्षिक, मासिक अथवा वार्षिक जो कुछ भी क्यों न कहा जाय—यहाँ तक कि दैनिक, दाण्डिक वा अनुपलिक कहे जाने पर भी उनकी नित्यता का व्याघात नहीं होता। इसमें एकमात्र अनन्त के आंशिक काल का ही लक्ष्य किया गया है। जिन्हें अनन्त की धारणा अथवा पूर्णता का ध्यान नहीं, उनके पक्ष में अंश ही उन्हें पूर्णता की ओर अग्रसर करा देता है । फिर भी अंश चिरकाल ही अंश है और पूर्ण भी नित्यकाल पूर्ण होता है। अंश कभी पूर्ण नहीं होता अथवा पूर्णता की समता प्राप्त भी नहीं कर सकता। जो नित्य वस्तु की धारण करने में असमर्थ हैं उनके निकट उसके आविर्भाव तिरोभाव अथवा जन्म-मृत्यु एक मिथ्या कल्पना-मात्र है। यथा—वृन्दावन मथुराधाम नित्य होने पर भी इनका आविर्भाव और तिरोभाव है । श्रीमन्महाप्रभु के अनुगत गौड़ीयजन ही नित्यधाम का अविर्भाव और तिरोभाव संपादन में सक्षम हैं। अन्य साम्प्रदायिक या असम्प्रदायिक वैष्णवगण इसका मर्म उपलब्ध नहीं कर सकते । श्रीमद्भागत ही इसके एकमात्र प्रमाण हैं। नित्य भागवत का पाक्षिक या मासिक आविर्भाव अशेष नित्य सौन्दर्य का विकाशक है । इसीलिये जगद्-गुरु गौड़ीय-कुल-शिरोमणि उक्त यतिराज-सम्राटने "भागवत" पत्रिका गौर-पक्ष और कृष्ण-पक्ष में प्रकाशित की थी। पूर्णिमा-पक्ष ही गौर-पक्ष तथा अमावस्या पक्ष ही कृष्ण-पक्ष है । सुतरां श्रीमद्भावत शास्त्र गौर तथा कृष्ण उभय पक्षों में ही व्याख्यात, विचारित, आचरित, आदृत, और अनुमोदित होते हैं। सर्वोत्तम विष्णु-तत्त्व अर्थात् गौर-भगवत्-तत्त्व में श्रद्धा या विश्वासहीन सम्प्रदायों को श्रीमद्भागवत का तात्पर्य अवगत करना विशेष आवश्यक है।

श्री और पत्रिका

'भागवत' शब्द के पूर्व 'श्री' शब्द सन्निवेशित होने से भागवत के नित्यत्व का बोध होता है। सुतरां नित्यता ही भागवत की 'श्री' है । इसके बाद 'पत्रिका' शब्द सन्निवेशित होने से ऐसा समझना चाहिये कि यह पत्रिका भागवत के आचार-विचार तथा सिद्धान्तमूलक वार्त्ता का वहनकारी है। 'पत्रिका' शब्द के द्वारा संवादवाही या वार्त्तावाही प्रभृति समझा जाता है। नित्य भागवत के नित्य वार्त्ता वहन-कारी-स्वरूप से "श्रीभागवत-पत्रिका" पाठकों के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं । अनित्य, असनातन, परिवर्त्तनशील और मिथ्या विचार अथवा लेख-माला प्रभृति इनमें प्रकाशित न होंगे। ग्राम्यवार्त्ता, आहार-निद्रा-भय-मैथुनादि अनर्थ प्रसवकारी कोई भी विषय 'श्री-पत्रिका' में स्थान न पायेंगे । जो सकल काव्य, दर्शन, कविता, लेख प्रभृति भोगमय इन्द्रियतर्पणता का प्रश्रय देते हैं उन्हें "श्री-पत्रिका" की संज्ञा नहीं दी जा सकती। सुतरां विश्री (श्रीहीन) विचार आदरणीय नहीं अर्थात् 'श्री' ही एकमात्र पारमार्थिक सत्य हैं । हम वर्त्तमान जगत् के श्रीहीन विचार-धारा का प्रतिरोध कर अप्राकृत वैकुण्ठ-जगत् की श्रीसम्पन्नवाणी परिवेषण करेंगे। अतः इस पत्रिका ने उक्त वाणी का परिवेषण करने के लिये राष्ट्र-भाषा हिन्दी को यान-वाहन के रूप में अवलम्बन किया है।

राष्ट्र-भाषा

भाषा, भावों की अभिव्यक्ति है। भाव हृद्गत वृत्ति-विशेष है। यह वृत्ति अथवा भाव जिस कोटि के यान-वाहन का अवलम्बन कर आत्म प्रकाश करता है, उसकी भाषा भी तदनुरूप होती है। यान-वाहन की दुर्बलता के कारण भावों की अभिव्यक्ति भी पूर्णता लाभ नहीं करती। भाषा जितनी ही शुद्ध, उन्नत और पूर्णता की ओर अग्रसर रहेगी, हृद्गत विचार-धारा भी तदनुरूप परिमाण में जन-समाज को प्रत्यक्षीभूत होगी। वर्तमान राष्ट्र-भाषा उन्नति लाभ कर समग्र जीव के भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति करे—इसी आकांक्षा को लेकर हम राष्ट्र-भाषा में वैकुण्ठ-भाव व्यक्त करने के लिये प्रस्तुत हुए हैं।

हिन्दी-भाषा

प्राचीन भारतीय प्रायः भाषा समुदाय ही संस्कृत भाषा से उद्भव हुआ है। वैदिक संस्कृत भाषा ही हमारी आदि भाषा है। इसी भाषा के अपभ्रंश-क्रम से देश, काल और पात्र के अनुसार भिन्न भिन्न भाषाएँ परिलक्षित होती हैं। उनमें हिन्दुस्तान के अधिवासी जिस भाषा में अपने हृदय के भावों का आदान-प्रदान करते हैं, उसी भाषा का नाम 'हिन्दी' है। 'हिन्दू' या 'हिन्दी' ये दोनों शब्द हमारे वैदिक या मौलिक शब्द नहीं हैं। संस्कृत भाषा में इनका व्युत्पत्तिगत अर्थ नहीं पाया जाता। फारस देश के अधिवासी सिन्धुनद के तटवर्ती अधिवासियों को सिन्धु न कहकर हिन्दू कहा करते थे। "वैदिक अथवा शास्त्रीय प्राचीनतम 'संस्कृत' हमारी मूल भाषा है"—यह सर्ववादी सम्मत होने पर भी हमने वर्तमान-कालोपयोगी हिन्दी-भाषा को ही राष्ट्र-भाषा के रूप में अङ्गीकार किया है।

भाषा का शासन

भावों की अभिव्यक्ति को भाषा मान लेने पर भी जिस देश के जो भाव हैं उस देश की भाषा भी तद्रूप होती है। एक दिन जिस देश में वैदिक भाषा व्यतीत अन्य किसी भी भाषा का प्रचलन नहीं था, जिस देश में जीव मात्र के उपास्य एकमात्र विष्णु-तत्त्व-समूह का आविर्भाव हुआ था एवं जिस देश के मध्ययुग में संस्कृत भाषा की माध्यमिकता में परस्पर भावों का आदान-प्रदान होता था, आज उसी देश में हिन्दी भाषा की माध्यमिकता में शासन चलाने की व्यवस्था हुई है। काल की प्रगति में अथवा परिवर्त्तनशीलता के बीच में जब जिस तरह की अवस्था का उद्भव होता है या होगा, हम उसे ही भगवत्-सेवा के अनुकूल में स्वीकृत करेंगे। "लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने। हरिसेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिच्छता॥" के अनुसार वैदिक क्रिया हो अथवा कोई लौकिक क्रिया ही क्यों न हो, भक्ति को लक्ष्यकर उसे करना आवश्यक है। इस प्रकार काल के लौकिक परिवर्तन का परिचय वैदिक विचार में ही विशुद्धरूप में पाया जाता है। सुतरां वेदातीत या शास्त्रातीत कोई भी अवस्था वर्तमान जगत के भूत, भविष्यत्, और वर्तमान काल में असम्भव है। अतः हम यावतीय अवस्थाओं को वैदिक अवस्था की परिणति मानकर तदनुकूल भाव से हिन्दी भाषा में ही पारमार्थिक नित्य, सत्य वैकुण्ठ तत्त्व की आलोचना करने के लिये प्रस्तुत हुए हैं।

राष्ट्र-भाषा का शासन

राष्ट्र, हिन्दी भाषा का अवलम्बन कर जगत के जिस विभाग पर शासन करेगा, श्रीभागवत-पत्रिका समग्र विश्व को उस विभाग से मुक्त होने की वाणी प्रकाश करेगी। राष्ट्र विश्व के किस अंश पर शासन करता है? देह और मन के कियदंश पर। किन्तु श्रीभागवत-पत्रिका देह और मन के शासन-संरक्षण और परिचालन आदि विषयों में दृष्टिनिक्षेप भी न करेंगी। राष्ट्र अपने जगत् को लेकर ही कालतिपात करेगा। श्रीभागवत-पत्रिका ध्वंसशील अथवा परिवर्तनशील देह और मन की क्रियाओं को अतिक्रम कर वैकुण्ठ-जगत के शासन अथवा नियमतंत्र को हिन्दी वर्तमान राष्ट्र-भाषा में प्रकाश करेगी। इसलिये श्रीभागवत-पत्रिका एकमात्र पारमार्थिक वैकुण्ठ वार्तावह के नाम से घोषित है।

प्रार्थना

सुतरां हम अपने समग्र पाठकवर्ग के श्रीचरण में निवेदन करते हैं कि, विशेष आग्रह के साथ इस

पत्रिका के विषयों का सम्यक्रूप से आलोचना करने से वे विशेष लाभान्वित होगें। यद्यपि जागतिक विचार-धारा प्रसूत साधारण भाषा से वैकुण्ठ जगत् की भाषा अथवा विचार का प्रचुर पार्थक्य और गुरुत्व है और इसलिये प्रथमतः यह पत्रिका कुछ अंशों में सहजगम्य न मालूम पड़ने पर भी पुनः पुनः पाठ करने पर कमल रोगोपतप्त रसना के लिए मिश्री-न्याय मधुरातिमधुर प्रतीत होगीं। हमारी सच्चेष्टा एवं सदनुष्ठान के प्रति आप लोगों की सहानुभूति और सहायता होने से हम अपने को कृत-कृतार्थ समझेगें। हम इसी महदुद्देश्य के साधन के लिए पूर्व-पूर्व महाजनों तथा वर्त्तमान मुक्त महापुरुषों की लेख-माला इस पत्रिका में प्रकाशित करेंगे। आधुनिक बद्धजीवों के लेखों में तरह-तरह के भ्रम-प्रमादादि दोष-परिलक्षित होते हैं। हम इस श्रेणि के लेख-प्रणाली के हाथ से सदा सावधान रहेगें। यही श्रीभागवत-पत्रिका का वैशिष्ट्य और गौरव होगा। अलम् अति विस्तरेण।